THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL LIBRARY
OU_182976
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5.000.

वृन्दा-वन

(ब्रजभाषा की रचनाओं का संग्रह)

★

मधुसूदन चतुर्वेदी

प्रकाशक :
चतुर्वेदी प्रकाशन समिति
कमतरी, आगरा (उ. प्र.)
शाखा : १८–७–३, बेगमबाज़ार
हैदराबाद दक्षिण (आं प्र.)

प्रथम संस्करण १०००
अक्षय तृतीया, सं. २०२४ वि.

मूल्य : १.२५

प्राप्ति स्थान :
भारतीय पुस्तक भंडार
बेगमबाज़ार, हैदराबाद (दक्षिण) आं. प्र.

मुद्रक : लोकविजय मुद्रणालय
गौलीगुडा, हैदराबाद (दक्षिण)

कवर व चित्र कमर्शियल प्रिंटिंग प्रेस
बेगमबाज़ार में मुद्रित

विषय-सूची

१. पथिक	...	१
२. समस्या-पूर्ति	...	१६
३. स्वतंत्रता	...	४२
४. माता	...	४३
५. कालिन्दी-कूल	...	३५
६. तरल तरंगें	...	४७
७. आम का ललहना	...	४८
८. ग्राम	...	५१
९. वियोग	...	५३
१०. चाकरी का चुनाव	...	५५
११. सुभीते की सवारी	...	५५
१२. शिक्षक के प्रति	...	५६
१३. जल गये दीप फिर	...	५७
१४. कोकिल	...	५७
१५. करघा	...	६१
१६. बतकम्मा	...	६५
१७. नागरी का निवेदन	...	६६
१८. बलि बेदी पर	...	६९
१९. दीपक	...	७२
२० फूल	...	७३
२१. कश्मीर हमारा है	...	७६
२२. आकांक्षा	...	८०

ब्रजभाषा काव्य के अनन्य प्रेमी कवि और आलोचक

स्व. श्री ओंकारनाथ जी पाण्डेय

की स्मृति में सादर समर्पित

व्यास पूर्णिमा, सं. २०२४ वि. —**मधुसूदन**

पथिक

बानि रावरी जानि-प्रिय, हमहुँ लगायो नेहु ।
बार न लावहु, करि कृपा, बानी बानी देहु ।।

*　　　　*　　　　*

ग्रीषम ऋतु को अन्त जानि बरषा ऋतु आई ।
प्रिय बिहीन ग्रह जानि प्रिया पाती पठवाई ।।
"अहो, प्रेम-घन ! प्राणनाथ ! मेरे मन-भावन ।
उचित कहहु किहि भाँति सुरति मेरी बिसरावन ।।
जा दिन तें तुम गए, न पलहू की कल पाई ।
मो अबला दुख दैन हेतु दिन होड़ लगाई ।।
एक एक करि आस-तन्तु सब टूटन लागे ।
मोहि अभागिनि जानि साथ सब छूटन लागे ।।
प्रीतम बिरवा-नेह नेह सों नवल लगायो ।
सुख सँयोग तुव पाइ रह्यो सोऊ हरियायो ।।
ग्रीषम-ऋतु की बिरह-घाम सों सूखन लागो ।
बचन-सुधा के बारि बिना डर ऊकन लागो ।।
बरखा के बर-बारि नाहिं सो पनपन पैहै ।
ज्यों ज्यों बरसै मेघ, जबासौ सौ जरि जै है ।।
जानि तिहारौ प्रेम नेह के बर बिरवा में ।
सींचन के हित हमहुँ लगायो जीवन जा में ।।
पै जीवन की ज्योति नाथ अब मंद भई है ।
बिरवा के जीवन हू की अब आस गई है ।।
पढ़ि पाती प्राणेश अब, आवन की उर धारिए ।
मो दुखिया के नेह कों, सींचि बेगि उद्धारिए" ।।२०।।

डोलत इत उत फिरत नहीं कोऊ पहिचानें।
काके ये मन हरन कौन इन सों हित मानें ।।

कबहुँ प्रेम के राग नाहिं मुख सौं उच्चारत।
सुखद बयारि न कबहूँ इनको हियो पजारत।।

कोकिल के बर बैन सुनत नहिं भये दुखारी।
दामिनि नभ में निरखि, न नैकहु बिथा बिचारी।।

हरियाये हिय घाव न लखि चहुँधा हरियाई।
मित्र मध्य मिलि बैठि न तिय की कीरति गाई।।

पहिरत विधिवत वस्त्र कसरि केसिहु नहिं राखत।
भरि भरि ऊँची साँस कबहुँ नहिं दुःख जनावत ।।

रहत काज-संलग्न मार की मार न जानें।
नियमित अपने काज सदा पूरे करि मानें ।।

प्रेम-रँगे मदमत्त ये न प्रेमी कहलावें ।
भूलि न भावुक-हृदय इनहिं प्रेमी ठहरावें ।।

एक गनें गुनवान, एक सज्जन अनुमानें ।
इनके गुनगन तौलि आपनी बुद्धि बखानें ।।

कछुक दिवस लौं रहे आपनो प्रेम दुरायो ।
जीवन में अब हेर फेर कौ औसर आयो ।।

चाकर चतुर सुजान "मधु", तेहि औसर पाती दई।
आखर कछु पहिचान उर, उत्सुकता सी वढ़ि गई।।४०।।

प्रीतम कर में आजु प्रिये की पाती आई।
जादू को सो जंत्र बाँधि अपने सँग लाई॥

मन्द मन्द मुसकात नैन उत्सुक से डोलैं।
हिय में भरो हुलास बन्द पाती के खोलैं॥

इत उत चितवत जात कहूँ कोउ आइ न जावै।
कंज-करन सों लिखे आँक नहिं सो लखि पावै॥

कछु टूटे कछु पूरे आखर जबहिं निहारे।
तन-मन अपने प्राण सहित तिन ऊपर वारे॥

बनि आँसू मृग नैनि नारि कौ मन वहि आयो।
सो आँकन ह्वै प्रीतम के नैननु में छायो॥

पाय सु-औसर प्रेम-राग उर-अन्तर जागे।
बिसरौ सकल बिराग-राग ही सों अनुरागे॥

कृशित बियोगिनि-छटा रही नैननु में छाई।
पिघलावन मन-मोम दई जनु ताप दिखाई॥

नित प्रति के आनन्द ते न अब नेक सुहाए।
जित देखे तित दृश्य सकल घर ही के छाए॥

लह्यौ प्रेम को स्वादु प्रेम-पाती पढ़ि पाई।
मन-भावन मन डिग्यो, चलन की चित ठहराई॥

खोजत औसर चलन को, कल न परत पल एक की।
विकल रहत दिन रैन "मधु", बूड़ी नाव विवेक की॥६०॥

कटी न कल सों घरी नींद नैननु नहिं आई।
कहुँ जागत, कहुँ सुपन देखि के रैनि बिताई॥

भयो भोर उठि प्रथम चलन अपनौ ठहरायौ।
मन न काज में लग्यौ रह्यो कछु कछु करि पायौ॥

सौंप्यौ सकल प्रबन्ध चलन के ठाठ बनाये।
प्रिया हेतु कछु भेंट लैन हित हाटहिं आये॥

कहुँ सुभाँति सों रँगी टँगी सारीं बहु देखीं।
कहुं चित्रावलि धरीं चितेरनि की अवरेखीं॥

कहुं पच्छिम के बने सुगन्धित अतर बिलोके।
जानि विदेशी तिनहि रहे अपनौं मन रोके॥

कहूँ चारु चौकोर छपे छोटे रूमाला।
सुरंग रँगीं रेशमीं बचते बूढ़े लाला॥

गाहक गुनि, करि मान विहँसि निज पास बुलायौ।
भूरि-भूरि गुन गाइ कछू बढ़ि मोल बतायौ॥

सरत न एकौ काज जानि आगे कौं हेर्‌यो।
हाट छोर लौं देखि आपनो रुख पुनि फेर्‌यो॥

खोजी अपनी जेब बार बीती बहु जानीं।
समुझि बूझि मन माँझ कछु लैबे की ठानीं॥

डोले इत उत सोचि सब, प्रिया हेतु सारी लई।
भेंट सु औसर की समुझि, तोष्यो मन, शंका गई॥८०॥

बहुरिध्यान मन माँहि कछू लरिकन को आयो।
अलव बयस सों जिन सौं बहुविधि नेह लगायो ।।

जिन्हें गोद बैठारि प्रेम पुचकारि खिलायो।
रूठ्यो रोवत जानि कछू दिखराय रिझायो ।।

धूरि भरे हू जानि जिन्हें उर सों लपिटायो।
किलकत जिनहिं बिलोकि उमहि आनँद उर आयो ।।

टूटे-फूटे बैन सुधा सम मीठे मानें।
जो छोटे हू भएं रहे अपनौ हठ ठानें ।।

सोचन उर में लगे कहा उनकौं हम दै हैं।
दौरि हमारे वस्त्र आपने कर गहि लैहें ।।

एक ओर कौ धरे मधुर फल तबहिं निहारे।
जाइ देखि करि भाव लये झोरी में डारे ।।

तहीं खिलौना धरे कुम्हारन कौ दल देख्यो।
विविध रंग सो रंगे, जँच्यो पै मनहिं न एकौ ।।

पै लरिकन कों मोद देन हित नीके जानें।
जेहू दाम गुलामन के मन में अनुमानें ।।

लयौ बड़े कौं बानर जो मुख सौं डरपावे।
पै छोटे कौं मोर मधुर जो बोल सुनावे ।।

सबही की इमि सोचि पुनि, सब ही कौं लाग्यो मल्यो।
सब प्रकार मन हरसि 'मधु', परदेशी घर कों चल्यो ।।१००।।

उडुगन की छबि अबहिं आजु कछु छीन भई है।
चन्द्र-प्रभाहू समय जानि कैं दीन भई है॥

सीतल सुखद समीर सुरभि लै चहुँधा धाई।
प्रात भये की खबरि नीड़ में चिरियनु पाई॥

चहकन चहु दिशि लगी तरुन की डोलति डारें।
वृन्द वृन्द मिलि बैठि बिहंगम बोल उचारें॥

कोकिल को कल कंठ अधिक कमनीय भयो है।
मिलि प्रभात को हात और आनन्द छयो है॥

प्राची दिसि मे अबहिं अरुण आभा सरसानी।
हिय हुलसावन नई जोति की जगी निसानी॥

सरितनु के तट तृषित खगनु की जुरीं जमातें।
मनहुँ लगन सुभ पाय भई-इक-ठौर बरातें॥

कहुं कपोत के वृंद उड़त आनन्द मनावें।
हरियल के गन कहूँ भूमि कौ हरित बनावें॥

रंग-बिरंग कहूँ चारु मुरवा बन डोलें।
कहुँ करीर के कुंज तीतुरा अटपट बोलें॥

ऐसे आछे समै प्रकृति घर बाहिर टेरत।
व्यथित जननु कौं बोलि बिथा को न्याव निबेरत॥

इमि निरखत सोभा सबनु की, उमहो मोद हियें मढ़्यौ।
बहु बार विदेसन में बितै, पथिक तरंगनि में बढ़्यौ॥१२०॥

ऊबड़-खाबड़ भूमि माँहि पग धरत सँभारे।
सुखद समीर सहाइ पार करि भये सुखारे॥
कछुक दूरि पै परी तबहिं सरिता दिखराई।
जासु तीर गहि चलत बटोहिन बाट बनाई॥
सरिता की गति मन्द कलेवर छीन भयो है।
बिकल बियोगिनि रूप जाइ बिधि आजु दयो है॥
विरह व्यथित जे और तिनहुँ ऐसो ही जान्यौ।
चपल भये पग प्रतिपल कौ मनमोल प्रमान्यौ॥
तट की सोभा निरखि रहे पुनि कछू लुभाई।
निकट नगर तें नवल नारि तहँ गावति आईं॥
एक ओर कौं बाल बूड़ि उछरें सुख पावें।
दौरत, लौरत, तैरत, किलकत मोद मनावें॥
एक तहाँ धरि धूरि माथ पै खौरि चढ़ावें।
नैन मूँदि, सुर साधि, माल जपि, हरि कौं ध्यावें॥
सरिता उर पै परत पवन के प्रबल झकोरे।
उमँग न गात समात उठत हिय माँझ हिलोरे॥
लखत न नैन थकात पौन की ये अठखिलियाँ।
मग नहिं जान्यो जात, प्रात की बीतत बिरियाँ॥
यह सीतल तट कौं छाँडि "मधु",
मारग कछु टढ़्यौ चल्यौ।
लखि अन्तिम सोभा ता समै,
करि प्रनाम याहू तज्यौ ॥१४०॥

मार्तण्ड चढ़ि गगन और हू तप्त भयो है।
चलत चलत मम मांझ पथिक अब कछुक थक्यो है।।

स्वेद-बुन्द तिहि मृदुल गात पै झलकन लागे।
वेग स्वास को बढ़्यो पगहु थल सों अनुरागे।।

सहज न चाहत तजन ताहि गति मन्द भई है।
सघन छाँह की खोज दौरि तब दीठि गई है।।

कछुक दूरि चलि गहन एक वट विटप निहार्यो।
ता नीचैं कछु देर लैन बिसराम बिचार्यो।।

मृदुल छाँह में बैठि मोद मन में अति बाढ़्यो।
गुनगुनान कछु लगे मार्ग-श्रम उर तैं काढ़्यो।।

कहन लगे नर धन्य मार्ग जे बिरछ लगावें।
परमारथ पथ चलहिं, ख्याति, जस, कीरति पावें।।

बिरवा हू वे धन्य देत अवलम्ब बटोहिन।
कोटि बरस लौं हरे रहैं नहिं सूखें इक छिन।।

कल पाई इहि भाँति नींद नैनन मे आई।
अधरनु पै पै बनी रही मुसकान सुहाई।।

स्वप्न माहिं कछु चित्र मनोहर मुदित निहारे।
चकित भये हरखाइ पलहि में पलक उघारे।।

पै ढिग सोई बट विरछ लखि, खिन्न भये कछु काल कौं।
उठि दूने पुनि उतसाह सौं, चलन लगे घर-बार कौं।।१६०।।

कछुक देर कों पौन अचानक बन्द भई है।
मारतण्ड की ज्योति और परचण्ड भई है॥

प्रेमी को दुख जबहिं प्रेममग नाथ निहारयौ।
ताही छन तेहि हेतु दैन बिसराम बिचारयो॥

सीतल सुखद बयारि बेगि पूरब तें धाई।
कछू कछू घन घेरि घेरि अपने सँग लाई॥

कहूँ घाम कहूँ छाँह नयो यह साज सज्यो है।
सुख-दुख को यह स्वाँग देखि मन पथिक हँस्यो है॥

पै बदरनु नें राज आपनौ चहूँ दिशि चीन्हौं।
मारतण्ड को मान मेंटि मिनटनु में दीन्हौं॥

गगन माँहि घन बार-बार जय-घोष करावत।
घुमड़ि घुमड़ि घहराय घने नभ में घिरि आवत॥

दूरि छोर लौं मंजु चारु छबि छाइ रही है।
प्रबल बेग सों बननु बीच मृदु ब्यारि बही है॥

मुरवन के गन कहूँ करत अति मंजु पुकारें।
टटाटीहरीं मोद मढ़ीं मृदु मन्त्र उचारें॥

उड़त गुड़ी सी कहूँ चील मँडराय रही है।
एक ओर तें तान पिकी की आइ रही है॥

मन प्रमुदित पुलकितगात भो, मारग "मधु" मंजुल भयो।
थकित पथिक इमि भाग बस, सकल भाँति को सुख लह्यो॥१८०॥

मोद मढ्यो मन पथिक कछुक पग आगैं आयो।
प्रबल ब्यारि नैं तबहिं अचानक ताहि दबायो॥

बरसन लागे बूंद घोर घन घोरन लागे।
बसुधा बिरस बिचारि ताहि रस बोरन लागे॥

माटी में तें कढ़ी सुरभि फैली चहुँ ओरन।
पात पात में प्रभा अनूपम लागी दौरन॥

भाजि बेग मगि छाँड़ि पथिक तरु नीचें आयो।
कछुक देर लौं घने पतौअनु ताहि बचायो॥

निरखन लागे ओर-पास की सो सुघराई।
प्रथम नीर सौं भेंटि मेदिनी आजु सजाई॥

तृषित भूमि की तबहिं प्यास कछु मन्द भई है।
विमल वारि सौं भरी, नहीं कहुँ गैल रही है॥

सरिता सी कहुँ बहन लगीं थोड़े अन्तर पै।
भारे-भारे बूंद परत तिन वक्षस्थल पै॥

दीठि जहाँ लौं जाति सुपेदी परति दिखाई।
मनहुँ शीत ऋतु व्योम बीच पाला ले आई॥

अब तरु-तर हू एक एक कै बूंदें आईं।
अपने सँग सो मनहुँ पथिक हित विपदा लाईं॥

प्रिय जन हित उपहार जो, हिये बीच लपटाय कें।
व्याकुल परदेसी भयो, मन मँह ईसु मनाय कें॥२००॥

कोउ न भयो सहाय मेघ बरजो नहिं मानैं ।
प्रणयी उर की पीर निठुर उर में नहिं आनैं ।।

चमकीली प्रिय भेंट रह्यौ पिय ज्यों-ज्यों मूँदें ।
चपला घन चमकाइ गिराईं त्यों-त्यों बूँदें ।।

भीजे सिगरे वस्त्र नीर झोरिहु में आयो ।
सारी सुन्दर धरी ताहि जल-मग्न बनायो ।।

चिन्ता उर में जगी कहा अब मुख दिखरैहैं ।
का लाये हो, कहौ, सुनत का ऊतरु दैहैं ।।

श्रीहत सारी भेंटि चारि आँखं किमि ह्वैहैं ।
वा आगें हू बेसऊर बनि माथ नवैहैं ।।

जौ कहुँ करि परिहास प्रिया पूछैगी मो सौं ।
एते दिन कँह रहे कहौ साँचो मेरी सौं ।।

कवन सवति सन मिली मरगजी सी यह सारी ।
तुमहूँ का बनि गये कान्ह बृज कुंज-बिहारी ।।

तब का विधि समुझाय सकं आशंका टारो ।
अहो निठुर बदरान बनी यह बात बिगारी ।।

फिरि मन में अनुमानि नहीं अपराध हमारौ ।
बादर कौ रुख फिर्यो देखि मग चलन बिचारौ ।।

डगरनु के जल बहि चले, इमि शीतल मंजु मही भई ।
घरु दूरि सु भयो नगीच अब, नई उमँग "मधु" अँग छई ।।२२०।।

ज्यों ज्यों गृह नगिचात तिया सुधि त्यों त्यों आई ।
मनहुँ सिनेमा-चित्र तहाँ हो परतु दिखाई ॥

देखो अपनी प्रिया अटारी ऊपर राजति ।
जग की सोभा सकल वा समै ता पै छाजति ॥

प्रिय-दर्शन-अभिलास पगी चहुँ ओर निहारति ।
उझकति इतउत चकित बनी निज नैन पसारति ॥

पथिक ताहि पहचानि मोद मन में अति पावै ।
उचकतु पंजनु जहाँ कहूँ नीचो मगु आवै ॥

कबहुं परासिनु के ऊंचे घर आड़े आवें ।
मग फिरि-फिरि फिरि जातु, तबहि दर्शन करि पावें ॥

ऊंचे बिरवा कबहुं पतान्नु सों मुँह ढाँपें ।
पौन सहायक बनें, खर सा थर-थर काँपें ॥

कबहु दुरावत, कहुं दरसावत सीस नवावें ।
आँखि-मिचानो खेल मनहु ये सुरति दिवावें ॥

आगे प्रिय यह देखि द्वार नीचे सो आई ।
पलटन लगी दुकूल न काहू खबरि जनाई ॥

बिहँसति इत उत फिरति, नई अंग सोभा छाई ।
मनहुं मदन शुभ समय जानि दीनी कमनाई ॥

पिय आगम उमँगी फिरति, पुनि कछु चलति लजाय कै ।
दौरि अटारी कहुं चढ़ति, सबको दीठि बचाय कै ॥२४०॥

पै माता नें निरखि तासु यह चंचलताई।
बिना कहें पहँचानि लई निज ललन अबाई॥

छोड़े सिगरे काज दौरि आई सो द्वारें।
मैले-उजरे वस्त्र रहे तैसे तन धारें॥

खेलत जेते रहे बाल मग मँह दौराए।
देखउ किन अब जाइ, कौन यहि गामहि आए॥

जो कोउ पहलै आइ लाल की खबरि जनैहै।
सोई मोसौं मधुर मधुर फल अब लै जैहै॥

दौरत देखे बाल गाँव बाहिर लौं आवत।
माता तौं लौं रही दीठि निज तहीं लगावत॥

बालक-गन पुनि कछुक धूरि में खेलत देखे।
धाखा द द एक एक सौं बोलत देख॥

"वे आए! व आए" किन, अब दौरो भाई।
क्यों न जाइ अब लेहु धरी तँह भूरि मिठाई॥

जा बिधि करत बिनोद बाल गन अति सुखपाए।
पै खीझत मन प्रथम दौरि जो आगे आए॥

माता घर के द्वार खड़ी लालन-मग हेरत।
जो कोउ निकसत गैल, ताहि अपनें ढिग टेरत॥

हेरत मंजुल-दृश्य ये मिनटनु में मग कटि गयौ।
परिचित-सर दीखन लग्यौ, जानौ ग्राम निकट भयौ॥२६०॥

सर आगें ज्यों चले भूमि सो परी दिखाई ।
बालपने में जहाँ सखनु सँग धूम मचाई ।।

जहाँ प्रात उठि आय खेल बहुतेरे खेले ।
स्वच्छ वायु के लोभ साँझ जहँ फिरे अकेले ।।

छुईछुआ जहँ खेलि हियौ अपनौ हुलसायौ ।
मगरा-पारी दई, चोर को नाम धरायौ ।।

हुलकडँडा, कहुँ गिली-डँड़ा, कहुँ चील-झपट्टा ।
विविध भाँति के खेल खेलि कीन्हों जँह ठट्टा ।।

रंग-बिरंगी कबहुँ पतंगें जहाँ उड़ाईं ।
को किनकी कै काटै, जा बिधि होड़ लगाईं ।।

पके आम जिय जानि जहाँ डण्डा लै आए ।
बार-बार तकि फकि अनेकनु झूरि गिराए ।।

कछु खाए, कछु सखन दए, कछु झोरी डारे ।
लरत-भिरत इमि बाल-वृन्द सब गेह पधारे ।।

कछुक दूरि पै धनु-मण्डली परी दिखाईं ।
कारी-पोरी-धौरी-धूमरि धावति आईं ।।

छुद्र-घंटिका बँधीं गरे सों शब्द रहीं करि ।
कोउ रँभाति, कोउ चकित, पथिक मन मोद रहौं भरि ।।

पूरौ अपनौ मग कियौ, भानु छिप्यौ आकाश में ।
बैठ्यौ पथिक स्वग्राम में, मानस मढ्यौ हुलास में ।।२८०।।

मिले मित्र-गन धाय 'राम जी की जै' बोली।
लीन्हों उर लपटाय, प्रेम गठरी जनु खोली ॥

पूँछि सकल विधि कुशल गाँव के हाल बताये।
"बैठी जोहति बाट, जाउ अब" कहि मुसकाये ॥

गुरु जन पुनि बहु मिले, चरण तिनके लीन्हें गहि।
बार-बार ऋषि-वचन-सरिस आशिष तिन सों लहि ॥

बढ़े गेह की ओर, बाल-गन नें तब चीन्हें।
खेल-कूद तिन छाँड़ि सुगम अति मारग लीन्हें ॥

धावन में अति सफल जनावन आवन धाए।
प्रेम-पगे तिन दौरि चरण में शीश नवाए ॥

तिनहिं गोद लै मोद सहित कछु पूछन लागे।
हँसन लगे कछु झूँठमूँठ कौं रूठन लागे ॥

तिनहिं मनावत सुख पावत अति, आगें आये।
गेह-द्वार लखि पर्यो तृषित-लोचन जल पाये ॥

मातु-दृगनि के बिछे पाँवड़े तबहिं निहारे।
रोम-रोम पुलकात मार्ग-श्रम सकल बिसारे ॥

चपल किए पग दौरि चरण उनके लपटाये।
प्रेम-पगी सुख बढ़्यौ वचन मुख सों नहिं आये ॥

पथ पूर्ण भयौ इमि पथिक कौ, प्रम-पत्रिका फलि गई।
बिरह-घाम सूखो, सरस बेलि लहलही पुनि भई ॥३००॥

समस्या पूर्त्ति

बगरो बसन्त है।

ग्राम की नवेलिन में चरचा चली है आली,
सीरो परो जा दिन तें कोप में हिमन्त है।

सोलह सिंगार साजे भौन में सँयोगिनी हू,
आनँद में भूलि कोऊ काहू को न गन्त है॥

केती मदमातीं प्रेम-पातीं रचि-रचि भेजें,
किन्तु हतभागीं हम बाम भगवन्त है।

अन्त ही हमारो बस अन्त में दिखाई देतु,
कन्त बिन हन्त हाय बगरो बसन्त है॥

समीरैं

सीत की रातिनु में ह्वै बिहाल,
बनाइ कें पाती रची अति धीरैं।

रूसि कें गेह तें नाह गए,
तिन नैसुक हीय बिचारी न पीरैं॥

पै मधु-मास में बौरे रसाल,
बिलोकि जुरीं जहाँ भौंर की भीरैं।

ही-तल में अनुराग जगावत,
शीतल मन्त बसन्द समीरैं॥

वारिधर बोरैं देत

सावन सुहावन में आवन भयो ना आली,
झुकि-झुकि झूमि-झूमि पौन झकझोरैं देत।

घुमड़ि घुमड़ि घन घोरत घनेरे 'मधु',
हृदय हमारो बिधि बज्र डारि तोरैं देत।

कोकिला की कूक हमें नैक न सुहाति तापै,
मोरहू मचाइ शोर विपति बटोरैं देत।

सींचत बिरह-बेलि उर की बढ़ाइ बिथा,
धीरज-धरा कौं आज वारिधर बोरैं देत॥

बदरा (आइ रहे)

बिरहागि लगैबे कौं पैने रहे,
सुख सोई घने सरसाइ रहे।

चहुँ ओरन मंडल बाँधि मनौं,
ये मनोज के बान चलाइ रहे॥

दुःख देबो करे दिन-रैन हमें,
"मधु" नेही बने ते सुहाइ रहे।

बदरा बजमारे हू नीके लगैं,
मनभावन जू घर आइ रहे॥

होरी में (चूमि रहीं)

होरी को सुनत सोर नोरीं भईं दौरीं द्वार,
आज ब्रज-मण्डल किशोरीं भोरीं घूमि रहीं।

थोरी-थोरी बैस भाजि आईं "मधु" चोरी-चोरी,
गलिनु-गलिनु गरबीलीं गोरीं झूमि रहीं।

केसरि-कुसूमी रँग घोरि गगरीन धरे,
मारें पिचकारीं भरि-भरि भींजि भूमि रहीं।

घेरि-घेरि ग्वालन गवावैं गीत गोल बाँधि,
घालति गुलाल नन्दलाल मुख चूमि रहीं॥

निठुराई

ब्रज कौं बिहाइ हमें छाँड़िकें अकेली नाथ,
भूले सुधि सारी प्रीति नैंकु ना निभाई है।

बासर बिताए एते विषम-वियोग-बीच,
नैनन के नीके नीर सरिता बहाई है।

मेरे मन-भावन को आवन की कौन कहै,
पाती हू पठावन की सुधि बिसराई है।

सुखद-समीर-आशा जीवन जगायौ करै,
नहीं मन-मोहन की पेखी निठुराई है॥

फरके परैं

बसत विदेस बिरहानल बरावैं मोहि,
दुख सौं दुखित सब देह दरके परें।

स्मृति बनी बारिद की बूँद मनो नैन-सीपि,
निकसि अनेक आँसू मोती ढरके परैं।

जीवन की ज्योति के दिनेश से सँदेस पाइ,
बिकसे सरोज मनों अंग-सर के परैं।

पाइ प्रेम-पाती कछू उर में उछाह छयौ,
आनँद-उमंगन में अंग फरके परैं॥

नीर बरसत है

आलस छयो है दूनों दूबरे भए हैं गात,
घुमड़ि-घुमड़ि ज्यों-ज्यों घन गरजत है।

चातक-रटनि सुनि आवै सुधि पियारे की,
कूक कोकिलान की करेजे करकत है।

मोरन के शोर सुनि बाढ़ति बिरह-बिथा,
दामिनी की दुति देखि देह दरकति है।

दीखत न कोऊ "मधु" उनसों जो कहि जाय,
नैननु सों निशि-दिन नीर बरसत है॥

खटकत है

बातनु बनाइ जिया चाहैं तहाँ चले जात,
हमें दिन-रैन मगु जोहत कटत हैं।

लगन-लगी आँखें न पलहू कौं पल ढाँकें,
रसना तिहारो नाम रीझि कै रटत है।

प्रणय-विभोर मन मानत न एकौ बात,
विषम-वियोग-ज्वाल-माल में दहत है।

जानि कैं सुजान हम प्रीति-प्रतिपाली अब,
रीति-नीति रावरी हिये में खटकत है॥

महिमा मयंक की

आली सुधराई बिलोकि तो आनन की,
गति-मति मंद भई राव और रंक की ।

कवि चतुराई भरे पावत समानता न,
नासिका की, नैननु की "मधु" भ्रुअ-बंक की ।

पाँखुरी गुलाबन की आभा पर पानी पर्‌यौ,
बात त्यौं सुनाई परी कोर के कलंक की ।

कंजन की, खंजन की चरचा चलावै कौन,
महि में मसानी मंजु महिमा मयंक की ।।

विद्रोह (काज)

पतिया रचि प्रीतम कौं पठवौं,
निज नेह कौ नातौ निबाहन काज ।

दुखदाई कुराज की ये सिगरी,
'मधु' मान मरोर मिटावन काज ।

बजमारिनु कौं बस कै अपनैं,
विरहानल बेगि बुझावन काज ।

रितुराज के राज में आजु अबै,
रतिराज कौ राज बुलावन काज ।।

निर्मोही (उरझाने हैं)

कासौं कहूं कैसे कहूं बारी-बिथा भाई भई,
हम उन हाथ बिन मोल ही बिकाने हैं।

बिधरी घड़ी है हम जल-बिन मीन हुए,
नही है अधार कोई अब पछताने हैं।

ह्वै मन-मोहन मन-मोह नेक हू न धार्यौ,
कीन्हौ निठुराई हित हू न पहिचाने है।

ठानी बानि भौंर की सी हाय ये हमारे बीच,
लाख उर छान पै न आप उरझाने हैं॥

सन्देह (तीर है)

जा दिन सौं बृज तें पधारे बनमाली आली,
ता दिन तें ननन सौं बरसत नीर है।

बासर बसन्त के बिलोकि उर बाढ़ै बिथा,
पिकी की पुकारैं सुनि आवत न धीर है।

बैरी बनि नाचत मयूर बृन्द बागन में,
गुंजरत कुंजन में भौंरन की भीर है।

कैसे कै बचैंगे प्राण ऐसे में न जानि परै,
शीतल समीर है कि मनमथ-तीर है॥

मन की

अब काहे विलाप कलाप करें,
मिलिहै कहा जो काहें या तन की।

उन बेनु-बजाइ बिचारी कहा,
हम चेरी करीं जिनही धन की।

हमें प्रेम को पाठ पढ़ाइ भलो,
पुनि भूलि गए प्रण-पालन की।

मन-मोहि मिले मन मोहन ना,
मन में ही रही हमरे मन की।

आगत्पतिका (फरकत हैं)

आवन की जा दिन तें औधि नियरानि लागी,
मन मृगनयनी के मोद उमहत हैं।

आशा की लहर लहरान लागी उर बीच,
देखे बिन नैन दिन-रेन तरसत हैं।

बसन सँवारै विधि स्वागत बिचारै कबौं,
प्रेम में विभोर ह्वै कें देह दरकत हैं।

दौरि-दौरि पौरि पुनि चढ़ति अटारी ओर,
भोर ही तें बाम-बाम अंग फरकत हैं॥

आए हैं

कछूक दिना तैं रीति-नीति ये अनोखी भई,
बारिनु बिवाहि मोद मंगल मनाये हैं।

बाजे-बाजे अरज न मानत हैं काहू भाँति,
बेटिनु सों बेटनु के बदले कराए हैं।

एते सों अघाने नाहिं औरहू अगारी बढ़ि,
सात और साठि लौं के जोड़ हू मिलाए हैं।

बेचि दीन्हीं केतिक बिनाही सात फेरनु के,
तो हू बजमारिनु कैं अँसुवा न आए हैं।

सज्जन (पियूष निचोरैं लगी)

कर तें कढ़ि कीरति की लहरी,
बढ़ि सागर विश्व हिलोरें लगी।

परमारथ में पग पैरे रहे,
गति यों दुःख-पाहन तोरैं लगी।

हिय पै हक हारे भये को भयो,
करुणा उनके कर जोरैं लगी।

रसना रस-सानी रिसानी नहीं,
मृदु-बानी पियूष निचोरैं लगी।

झण्डा झुकने न दो

बीर-बर बाना बांध आवहु मैदान बीच,
व्यर्थ बकवादियों को बातें बकने न दो।

पांवरों की पोल खोल डालो पल एक ही में,
कुटिल-कलंकियों को आगे डटने न दो।

भव्य-भाव भावुकों के उर में भले ही भरो,
दुष्ट-द्रोहियों की किन्तु दाल गलने न दो।

ठौर मर जाओ, पग पीछे को हटाओ नहीं,
वीर-भूमि भारत का झण्डा झुकने न दो।

युवक समाज का

प्रबल परीक्षा यों पराक्रम की हो रही है,
भुगत रहे हैं फल आज पर-राज का।

सदियाँ बिता दीं, अब घड़ियाँ कठिन हुईं,
चाहक बना है शीश काँटों के भी ताज का।

मौज मारने को 'मधु' समय रहा न शेष,
प्रण जब हाथ लिया आपने स्वराज का।

डूबेगा अब भी जहाज यदि लाज का तो,
होगा कब कैसे भला युवक समाज का।

आशा (विजन में)

प्रेम-मय लोचनों में नृत्य करतीं हो नित्य,
राजती सदा हो मौन मुनियों के मन में ।

निपट निराश्रितों का आश्रय तुम्हीं हो देवि,
धाम है तुम्हारा धनिकों के भूरि-धन में ।

प्रबल-प्रतीक्षा में सहारा है तुम्हारा 'मधु'
प्राण रखती हो, तुम्हीं चिन्तितों के तन में ।

सारे विश्व-मण्डल को भ्रम में भ्रमाती नित्य,
पाते हर ठौर तुम्हें वन में विजन में ।

विदाई (जाने दो)

(पुत्र-वधू के प्रति)

जा रहा है, जाने दो न देखो उस ओर तुम,
वेदना को भूल के न मानस में आने दो ।

छलक रहे हैं कुछ अश्रु-कण लोचनों में,
उनको न मेरे लाड़िले को लख पाने दो ।

मचल उठेगा मन अति सुकुमार 'मधु'
मेरे वत्स को न मेरे पय को लजाने दो ।

आवेंगे तुम्हारे काम आँसू ही अनेकों बार,
पोंछ डालो, यों न इन्हें व्यर्थ बह जाने दो ।

जान के गाहक

नहिं काल-दुकाल को ख्याल तुम्हें,
सब जानत हौ हम है जिहि लायक।

धन पाय अघात नहीं कबहूँ,
यह बानि बुरी, झगरौ हक-नाहक।

अब पाइहौ और कछू न यहाँ,
बनौं क्यों न भले तुम और के चाहक।

उपरोहित जू छमियै अब तौ,
न बनौं जिजमान की जान के गाहक॥

तरवार की धार पै धावनो है

जिमि मारि कैं माल अमीरन के,
घर आइ चबैना चबावनो है।

भ्रमि कैं जनु देस-विदेसनु में,
बन-बीहड़ जाइ बसावनो है।

जिमि चाखि कैं दाख अँगूरन कौं,
कटु नीम सौं नेह लगावनो है।

घर जाय कै कालिज आवनौं त्यौं,
तरवार की धार पै धावनो है।

स्वर्ग की सीढ़ी

जाइ रिसाइ धरे अपने निज,
नारि कों मारि कै सम्पति छीड़ी।

लै मदिरा मद-मातिन कों 'मधु',
साजि कै हाथ में पान की बीड़ी।

चन्दन चारु चढ़ाइ के भाल पै,
तारन के हित आपुनी पीढ़ी।

चौंकत हेरत चारिहु ओर कों,
सेठ जू ताकत स्वर्ग की सीढ़ी।

तुलसी

धनि ग्राम जहाँ तुव जन्म भयौ,
जहँ कीरति-बेलि बढ़ी बिकसी।

धनि धाम वही जँह बास कियो,
सुख शान्ति सदैव जहाँ सरसी।

धनि ग्रंथ जिन्हें तुम गाइ गये,
जिनके जस भूमि रही भर सी।

धनि है धनि है सब भाँति तुम्हें,
हुलसी-हुलसी के लला तुलसी।

सम्हारौगे

हारि से गये हैं हम हेरत तिहारी बाट,
बूड़ति हमारी नाव 'मधु' कब उबारौगे।

मूँदि बैठे नैननु कहाँ हौ करुणा-निधान,
समय पड़े हू पै न पलकनु उघारौगे।

वैभव विलास बल बुद्धि हू विलीन भई,
बिलखत बिचारिनु पै क्यों न दया धारौगे।

अधिक कहाँ लौं अब कुगति हमारी ह्वै है,
अजहूँ सँभारी नाँहि, कब अब सम्हारौगे।

आह्वान (धार पै)

निज जननी के नीके लाल कौन ख्याल भूले,
डारत न दीठि भूमि-भारत के भार पै।

बिकल बिहाल देस वासिन बिलोकि बेगि,
कीजिए निहाल बलि जाउँ बलिहार पै।

फेरि ऐसो औसर न ऐहै कहैं टरि-टरि,
वारि दीजै तनु-प्रान दीननु पुकार पै।

जूझि जैए जंगनु में जननी के काज आज,
सीसनु कटैये तरवारिनु की धार पै।

मन-मधुप (लुभानौ है)

जा दिन तें या जग में जीवन को भार गह्यो,
पूरित पराग खोज्यो शान्ति को खजानौ है

वैभव गुलाबन की डारनु में भ्रमि हार्यो,
काम-केतकी के कंटकनु अटकानौ है।

जीवन बितायो एतो बिन जगदीश के ही,
भेद हितहू को नाहि नेकु पहिचानो है।

मेरो मन भयो रह्यो मधुप के रूप आली,
हरि-पद-पंकजनु अंत सो लुभानौ है।

तरसे

कहुँ पाले पड़े पके खेतनु में,
लाग लूहे कबौं बिरवा झुरसे।

कहुँ कीटनु कीन्हीं कृपा कृषि पै,
फल खाइ कुरंग कहूँ हरसे।

कहुँ बेगि बढ़ाइ बयारि बही,
कबहूं घन नीर नहीं बरसे।

कल नाहिं मिली कबहूँ इनको,
'मधु' दीन किसान सदा तरसे।

चितचोर (जाते हो)

बसते कहाँ हो कभी जान भी न पाते हम,
संतत बुलाते हैं कभी न किन्तु आते हो।

भ्रमते विचारों के भ्रमर में कभी हो तथा,
कभी श्रवणों में सुधा मंजु बरसाते हो।

रमते शरीर में हो कभी 'मधु' ठौर-ठौर,
लोचनों में छाते कभी उर में समाते हो।

पाते यदि नेक भी हो चंचल कभी हमें तो,
विह्वल बनाके हमें छोड़ भाग जाते हो।

प्रेम मतवारे (मतवारे हैं)

नैन उलझे हैं लाड़िली के जादू-जाल में ये,
जबसे लजीले लोल लोचन निहारे हैं।

ली है ये लड़ाई व्यर्थ ही की मोल मानस ने,
जीतते भी हारे और हारते भी हारे हैं।

वेणी ही के बन्धनों में बँधी भावनाएँ सारीं,
संकटों में आ फँसे यों प्राण भी विचारे हैं।

भूल गये प्रेयसी से पूछना पता भी 'मधु'
गई मति मारी भये पूरे मतवारे हैं।

मुकुर में

भूलना तुम्हारा अब सम्भव रहा है नहीं
राग है तुम्हारा मिला मेरे मौन स्वर में।

होते हो विलग तो भी सामने सदैव होते,
रूप धुलता न इन आँसुओं की झर में।

होता है अचंभा ज्यों-ज्यों सोचता अधिक हूँ मैं,
कैसे कर बैठे आप घर मेरे उर में।

मूँदता हूँ आँख दीखती है मुझको तो 'मधु',
मंजु मनोहारी मूर्त्ति मानस-मुकुर में।

मिला

बन बावले केवल आप गये,
न चली उनकी यहाँ एक कला।

बटुए में विलायती औषधि ला,
मृतप्राय विधान सके न जिला।

जब प्रेयसी लीग ने मान किया,
सठ दूत को सूट सके न सिला।

फल एक हुआ अधिनायकों को,
मुख खोलने का अधिकार मिला।

हम न कहेंगे तुम लाख कहिबौ करौ

तिलगू, मराठी, कन्नड़ी के या प्रदेश माँहि,
नागरी की सरिता अगाध बहिबौ करो।

घरनु में हाटनु, बजारनु में चारों ओर,
उत्सव अनेकनु में राज रहिबौ करै।

हिन्दी के हितैषी बनि गीत गुण गाइ-गाइ,
तुम मन मानौं भले मोद लहिबौ करो।

भाग नगरी की भाषा नागरी रही है सदा,
हम न कहेंगे, तुम लाख कहिबौ करो।

समस्या (जगै)

पितृ सम्पति सों हम जाइ जुटे,
जिमि शूकर जाइकें खेत लगै।

नित खाइ खवाइ खराब करै,
न हटै हटकें नहिं मारें भगै।

हित भ्रातनु कौ कछु ध्यान नहीं,
परदेसिन, प्रेम में पूरे पगै।

'मधु' चाहत नाम हमारो बढ़े,
चहें जाति हमारी जगै न जगै।

असफल (विरानी है)

जिसके लिए थे मैंने सब सुख छोड़ दिए,
उसने न प्रीति की प्रतीति कुछ मानी है।

कभी मिलता है उसे लोक-लाज का बहाना,
कभी संकोच के सुहाग में दिवानी है।

विधि के विधान से हुआ है कुछ हाल ऐसा,
सुनता न कोई यहाँ करुणा-कहानी है।

कठिन घड़ी है, नहीं कोई अवलम्ब रहा
मेरे लिए हुई हाय वसुधा विरानी है।

घर के न घाट के

छन्द को बनैबो ताहि ढंग सों सुनैबो सीखि,
चाहक बने हैं 'मधु' कविता की चाट के।

कवि-सम्मेलनन में जैबो है ज़रूरी भयो,
गाँठि तें निकारी दाम देनें परें बाट के।

नाम के बरन सुवरन लिखे ठलुअन,
भार घरवारनु पे परें पूरे ठाट के।

घरें फटकारे गए-बाहिर बिनोद बन्यो,
कवि जू बिचारे रहे घर के न घाट के।

फूट पड़ी

चहकन लागे चारु-चारण समान खग,
विरुदावली की मानों मंजुमाल टूट पढ़ी ।

लहकन लागे तरु-वृन्द वन वीथिन में
महँकन लागी लोनी लतिका सुमन मढ़ी ।

शीतल समीर सुखदायक वहन लागी,
गगन मगन क्षिति पर छवि छूट पड़ी ।

फैलगयो रवि को प्रकाश आसपास 'मधु',
प्राची की दिशा म देखौ जोति नव फूट पड़ी ।

कौशलेन्द्र की

काकली की कोकिल कहाँ है कोई जानता न,
खोज हुई व्यर्थ काव्य-कानन मृगेन्द्र की ।

उडुगणों की ज्योति से है झिलमिल काव्य-व्योम,
मिलती है झलक न चाँदनी की चन्द्र की ।

उस कल-कूक को न कान कभी भूलते हैं,
जिसे बरसाती रही वाणी श्री कवीन्द्र की ।

करुणा-कलाप रोम-रोम में समा-सी रही,
विह्वल बनाती सुधि आती कौशलेन्द्र की ।

आने से

जीवन में सुख, चित्त की ही एक भावना है,
दु:ख मिलता है फल इच्छित न पाने से।

खीझ-खीझ कोई भोगता है निज भाग-भोग,
टल जाती आपदा किसी की कीत गाने से।

गौरव का ज्ञान ध्येय उच्च बना देता, किन्तु,
हर्ष मिलता है उसे दृढ़ हो निभाने से।

शान्त रहते हैं सब काल वीर जन, किन्तु,
साहस उदित होता विपदा के आने से।

(२)

आए क्रिप्स भारत में लंदन का पत्र लेके,
आशा का उदय हुआ बातों के बनाने से।

खोखली थी योजना न फल-फूल पाई यहाँ,
दु:खित न कोई उनके यों लौट जाने से।

वेवल ने बाद में बनाया क़िला कागज़ी जो,
उड़ गया लीग के बवडर उठाने से।

पूरण स्वराज ध्येय भारत का ध्रुव आज,
काम न चलेगा अब सिर्फ चार आने से।

राखी है

कितने दिनों से दीनता के गर्त्त में जा गिरा,
उन्नति हुई न हम लाख अभिलाखी हैं।

जैसे जब चाहा दुलराया ठुकराया गया,
शासन अनीति का तो विश्व सारा साखी है।

देते रहे सब कुछ मिला न किन्तु रंचक भी,
नीति मे प्रतीति बार-बार गई भाखी है।

तड़प रहा है देश भारत स्वतंत्रता को,
लीगियों-अछूतो की ही टेक गई राखी है।

माँगें भरें कि छलाँगें भरें

चहें दास अहें न उदास हें,
बिन हेतु भलें ही पुकारें करें।

धन धर्म्म रहे, न रहे अपनो,
नहिं सोच भले फटकारें परें।

परदेश को भेष पियारो लगै,
निज देश के दोष गनावें घरें।

बलहीन भए नहि साहस है,
अब माँगें भरे कि छलाँगें भरें।

सेठ जी का दलित-सुधार (धार पै)

सेठ जी के घर में गई थी कुछ खटपट हो,
रूठ बैठी सेठानी रसीले व्यवहार पै।

शीत का प्रभात सरदी में सकुचाई हुई,
आई महतरानी दूसरे ही दिन द्वार पै।

आनन मलीन देख साहस से पूछ बैठी,
आ गई है विपदा क्या कोई कारबार पै।

लग गई लगन तभी से कुछ ऐसी उन्हें,
थैली खोल दान देते दलित-सुधार पै।

धूम मची है

कीजे कहा चलियै कित कौं,
नहिं एकहु चित्त कौं बात जँची है।

बौरे भए बिगरे सिगरे 'मधु',
ठौर न या ब्रज बीच बची है।

गैलन गैलन ग्वाल फिरैं,
चहुँ ओरन गोरिनु होरि रची है।

द्वारन द्वारन आजु गमारन,
देखु धमारन धूम मची है।

समस्या प्यासी

भारत के महाभारत में सुख-,
संपति-शान्ति सबै विधि नासी।

और अनेकनु युद्धन में,
जग की बहु भाँति भई क्षति खासी।

यूरुप के संग्रामनु की सुधि,
रंचक हू न भई अबै बासी।

शान्ति लखाति नहीं कत हूँ,
अज हूँ वसुधा रही रक्त की प्यासी।

अंचल पसारता

विधि ने बनाया तुझे रूप-गुण आगरी है,
दे दी है अपार चारु मंजु सुकुमारता।

तेरी माधुरी का मधु-पान करने के हेतु,
मेरे लोचनों का युग्म चाव से निहारता।

किन्तु बलिहारी तेरे उर की कठोरता को,
पाता कण एक भी न ऐसी अनुदारता।

जान लेता कृपणता छिपी है कमनीयता में,
भूल के न तेरे आगे अंचल पसारता।

गयन्द गति भूली सी

दुष्ट दुराचारी देत नाना विधि दुःख नाथ,
आजु कालि देश माँहि दुष्ट-बेलि फूली सी।

नासो सब तेज रोग ग्रसित शरीर सारे,
धन और धैर्य्य की भई है हाय धूली सी।

आओ अब बेगि नाथ आवन की बेर भई,
भूले आपहू कौं जानि कोरी ये ठठोली सी।

गीध गति भूले और भूलि गए गणिका की,
भूले गति गौतम गयन्द गति भूली सी।

सन् २९ का कमीशन (अश्रु बरसाए हैं)

भारत के भाग्य के विधाता बनि साइमन,
स्वदल समेत देश भारत में आए हैं।

बायकाट मंडल का ज़ोर चारों ओर बढ़ा,
दौड़-धूप नेता सब जग में मचाए हैं।

हुई हड़ताल आज कोने-कोने देश के में,
स्वागत नहीं है ना सुधार ही सुहाए हैं।

छिपा रहा दो दिन दिनेश गरमाया हुआ,
शोक कर इन्द्र ने भी अश्रु बरसाए हैं।

एक पैसे में

नैनन उघारि देखो भारत की दीन दशा,
जीवन कठिन क्षण एक हू को ऐसे में।

आरत पुकारत हैं दुखित किसान हाय,
कीजिए सहाय असहाय की अनेसे में।

शरण गहे की लाज कौ लौं ना बचेगी आज,
बैठे निरुपाय नाथ आपके भरोसे में।

वैभव-विलास आस पास हू लखात नाहीं,
प्राण अटके हैं आइ एक-एक पैसे में।

है अनमोल

मोहन की मुरली बजी,
बोले मधुरे बोल।

श्रवननि कौं सींचति सुलभ,
अमृत है अनमोल,

निरखि मनोहर श्याम को,
उलझे लोचन लोल।

मन-पट पर अंकित भई,
सो छवि है अनमोल।

स्वतन्त्रता

उर में कभी भी यदि वीणा बजी तेरी देवि,
भाव भयकारी तो सदा के लिए सो गये।

अतुल उमंगें उर आसन विराजे लगीं,
कायर-कपूत भयभीत हो के खो गये।

तेरे ही प्रताप बलशाली श्री प्रताप जैसे,
भारत की भी भूमि में सुधा का बीज बो गये।

सुख से स्वतन्त्रता के चरण चढ़ाये शीश,
मर मर अमर अनेक नर हो गये।

(२)

भगवन् हमें अब यश की रही न चाह,
चिन्ता नहीं नैक यदि प्राण की भी बलि जाय।

तन जाय, मन जाय बरु सरबस जाय,
अटल हमारी पैंज किन्तु नहीं टल जाय।

फहरें पताके चारों ओर ही स्वतन्त्रता के,
फूट-वल्लरी के अंकुरों में आग लग जाय।

कैसा है स्वतन्त्रता का जोश जग जान जाए,
भारत में ज्योति फिर जीवन की जग जाय।

माता

देख हमें दुःख में न दूर कभी होतीं तुम,
सुख में हमारे में ही किन्तु सुख पातीं हो।

पालतीं हमें हो पाले सहो शीतकाल के भी,
शान्ति बरसातीं हमें पालना झुलाती हो।

विपत्ति बिलोकि तुम्हीं वीर बनती हो देवि,
साहस असीम पातीं, विश्व बिचलातीं हो।

पर दुःख में प्राणों का त्याग किस भाँति होवे,
आत्म-त्याग द्वारा सारे विश्व को जतातीं हो।

(२)

अर्पण तुम्हारा सारा हित है हमीं पै होता।
दूसरों की ओर पल एक ना निहारतीं।

मानस के मन्दिर में थापती हमें ही सदा,
संचित समस्त नेह मेंट कर डारतीं।

लोचनों की ज्योति द्वारा दीपक जगातीं तुम्हीं,
बोल-बोल बैन बर आरती उतारतीं।

मग्न हमें देख 'मधु' खिलता सरोज मन,
प्राण मंजु मूरति पे बार-बार वारतीं।

(३)

खोजा विश्व-मण्डल न पाया किन्तु कोई और,
डूबा नेक भी हो जो हमारे सत्य नेह में।
करके भलाई जो न चाहता भलाई कभी,
स्वार्थ-त्याग की हो हो उमंग जिस देह में।
मानस के पींजरे में पक्षी हमीं होवें जहाँ,
ध्यान हो हमारा जैसे रत्न एक-गेह में।
झेल ले तनिक भी जो संकट हमारे लिए,
हमको विलोक घिरा विपदा के मेह में।

(४)

सेवा तुम्हारी की भारी भार सर पर हुआ,
इससे उऋण होना हमको न आता है।
चिन्ता न इसकी कभी होती तुम्हें माता नेक,
माँगना उधार की भी तुम्हें न भाता है।
दिन दिन दूना होता जाता ज्यों तुम्हारा ऋण,
धरती धँसकती और शेष थर्राता है।
कारण प्रलय का एक होता सदैव ये भी,
भार बढ़ते ही हाहाकार मच जाता है।

कालिन्दी-कूल

लसैं कालिन्दी के वर-कूल,
पवन में झूलें फूले-फूल।
जहाँ नाचें मद-मत्त मयूर,
मधुप मधु के लालच में चूर।

जहाँ जमुना नित करहिं कलोल,
लहरि लहरन महँ बोलहिं बोल।
जहाँ पर सुन्दर सरित-प्रपात,
शुभ्र जल जिनसों ढरकत जात।

(२)

जहाँ ग्वालन-बालन के वृन्द,
बिपिन मे बिहरें भरे अनन्द।
जहाँ मुरली मुरली-धर धरें,
रास रचि मीठे स्वर उच्चरें।

जहाँ गोपी-जन अति सुख पाइ,
प्रेम सों प्रेरित आवें धाइ।
फोरि दधि-गगरि करें उतपात,
गात पर माखन ढरकत जात।

(३)

जहाँ नित खेलहिं राधे-श्याम,
सुखद शोभा के सुन्दर-धाम ।
रहें दिन-रैन पगे ही प्रेम,
नित्य ही नए निबाहहिं नेम ।

जहाँ नित नवल वेष वर साज,
युगल श्री राधा-कृष्ण विराज ।
करें हँसि-हँसि कें दोऊ बात,
प्रेम-रस पावन ढरकत जात ।

(४)

कहाँ वह रम्य दृश्य अब हाय,
कहाँ वह शोभा नई विहाय ।
जहाँ सों नैन नहीं हटि जात,
तहाँ अब सूखे वृक्ष लखात ।

काल की निर्दय-गतिहिं निहारि,
विधाता की वरबुद्धि बिचारि ।
हियो अब हेरि-हेरि हहरात,
नयन सौं अँसुआ ढरकत जात ।

तरल-तरंगें

आओ ! तरल-तरंगे आओ !
कल-कल गान सुनाओ ।
आओ तरल-तरंगें आओ ।
श्रान्त पथिक हूँ सन्ध्या पा कर,
तीर तुम्हारे बैठा आ कर,
अपना गायन मधुर सुना कर,
तन का ताप मिटाओ ।
आओ ! तरल-तरंगें आओ ।
यहाँ कौन मेरा कहने को,
व्यथित देख व्याकुल रहने को,
मार्ग-जनित-श्रम के हरने को,
मेरे चरण धुलाओ ।
आओ ! तरल-तरंगें आओ ।
चन्द्र-किरण ने शीतलता दी,
मन्द-पवन ने चंचलता दी,
मातृ-प्रेम ने आकुलता दी,
यमुना-मैया इन लहरों को,
धीरे-धीरे आओ ।
आओ ! तरल-तरंगें आओ ।

आम का उलहना

गोद में प्रकृति की में चाव से उमंग भरे,
नीरद का नीर पाके हम उग आते हैं।

रहते छिपाये अपने को हरियाली बीच,
वन्य जन्तुओं से तब प्राण बच पाते हैं।

किन्तु हर लाते हमें लाते दया उर में न,
वे ही सभ्यता में जो कि ऊँचे गिने जाते हैं।

कर अनरीति बाँधते हैं परतन्त्रता में,
स्वार्थ-साधने को नर हमें अपनाते हैं।

(२)

शासक सबल यदि कोई भी पराया देश,
अपने सुबल से स्ववश कर पाता है।

अपने प्रबन्ध से सुशासन की भले ही क्यों न,
विविध-प्रकार से प्रतीति जतलाता है।

लालची, अनुपकारी, द्रोही, दुराचारी आदि,
भूषित विभूषणों से यों ही किया जाता है।

किन्तु निज-वाटिका में हमको बनाके बन्दी,
मानस-समाज में स्वमान को बढ़ाता है।

(३)

चोट, अपमान की भी, भूलते सहज ही में,
प्रेम-भरी दृष्टि जब हम पर डारते।

भरते हैं उर में उमंग दिन-दिन दूनी,
ज्यों-ज्यों हमें लोग लाड़-प्यार से निहारते।

मानते हैं उनको ही जीवन का कर्णधार,
उन पर सब कुछ अपना हैं वारते।

रह के शरण में भी बढने न पाते हाय !
जैसे चाहते हैं वैसे काट-छाँट डारते।

(४)

पार कर सागर ये विषम विपत्तियों का,
जीवन के मग में हैं हम पग धारते।

सुरभित करते हैं आता यदि पास कोई,
मंजु-मंजरी हैं हम औरों पर वारते।

भार सहते हैं सदा भारी फलों का भी 'मधु',
चाहता तुरन्त उसे डार से हैं डारते।

तो भी हाय तनिक दया न लाते उर,
पर-उपकारी को भी पाहन से मारते।

(५)

जिह्वा को चखाते हम, सरस-मधुर-रस
कान को भी कोकिला की तान सुनवाते हैं।

आँख को दिखाते 'मधु' वैभव वसन्त सारा,
नासिका को मंजरी मृदुल सुँघवाते हैं।

शीतल पवन अमराई से चलाते नित्य,
तन को सदैव मोद-मत्त सा बनाते हैं।

तृप्ति करते हैं इन्द्रियों की मानुषों की हम,
तो भी उपहार में अपार मार खाते हैं।

(६)

बाँध कर बेड़ियों में किसी को सदा के लिए,
फिर दिखलाना कहो उसको प्रतीति क्या ?

स्वारथ का साधन बना के शरणागत को,
व्यर्थ पालते हो यही पालने की रीति क्या ?

लाभ करता है सुख, सेवा दूसरों की में जो,
सेवक दुखित को दिखाते कहो भीति क्या ?

मारते उसे हो 'मधु' झुकता चरण में जो,
ये भी यदि नीति है तो फिर है अनीति क्या ?

ग्राम

सुख-सुषमा के धाम ग्राम तुम धन्य मनोहर,
सकल भाँति अभिराम धन्य तुम दीन-सहोदर।

पूर्व-जननु की कीर्ति-सभ्यता के परिचायक,
धन्य तिहारौ संघ धन्य तुम हौ सब लायक।

सभ्य कहावत आजु जे,
तिनके औगुन तें बचे।

धन्य तिहारे ठाठ जो—
अपने ही कर सों रचे।

कछू दिननु सों बही ब्यारि इक देश-विनासी,
कर-कारज कौं छाँड़ि भए सब कर-अभिलाषी।

धन्धे बहुतक छुटे-ग़रीबी घर-घर छाई,
कल न काहु कों रही लहरि जब तें यह आई।

चक्की-कोल्हू-हल सकल,
किए कलन बेकार हैं।

ग्राम-निवासिन कौं भए,
जीवन तब तें भार हैं।

छोड़ि-छोड़ि निज ग्राम नगर कौं लपकन लागे,
पै न तहूँ हूं अजहुँ भाग उनके कछु जागे।

मारे-मारे फिरें लौटि फिरि घर कौं आवें,
रह्यो-सह्यो धन नसै स्वास्थ्य हू व्यर्थ गवावें।

इन दीन-जनन के हेतु कोउ,
अजहूँ नहि मारग खुल्यौ।

स्वर्गिक-सम आनन्द सब,
दुःखमय जीवन में घुल्यौ।

ग्राम-निवासी जगौ ग्राम में ज्योति जगावो,
छूटे धन्धे तिनहिं फेरि सुख सों अपनावो।

करहु संगठन सुदृढ़ पढ़ौ सब विद्या नीकी,
हिलिमिलि कं फिरि रहहु क्लान्ति मिटि जैहैं जी की।

फिरि ग्राम तिहारे आजु तैं,
वैभव के आगार हों।

शान्ति मिलै सब ठौर 'मधु'
सुखमय सब परिवार हों।

वियोग

मीन बसती है सदा सुन्दर ललित मध्य,
तो भी जलसुधि प्राण हरती है उसका ।

चातक सदैव स्वाति-वृष्टि के सहारे रहे,
सुस्मृति उसी की तो दुखाती चित्त उसका ।

जिसको बनाते मित्र पाते दुःख उससे ही,
जान लिया भेद मैंने कौन यहाँ किसका ।

प्राण प्रियतम पर वार दिये मैंने 'मधु'
भुगत रही हूँ वही बदला मैं उसका ।

(२)

तरल-द्वयी के जो सँयोग से है वारि बना,
शीतल सदैव शान्त औरों को है करता ।

छोड़ के संयोग होते विलग तरल ज्यों ही,
एक जारता है और दूसरा है जरता ।

प्रिय के संयोग में न ज्ञात हुआ दुःख कभी,
संतत ही उर में प्रमोद रहा भरता ।

जारते प्रतीत होते किन्तु इस काल वे ही,
सारा ये शरीर विरहानल में जरता ।

(३)

प्रिय के वियोग में समस्त देह भस्म होती,
जो न सुधि उनकी सदैव मन करता।

रुकता न अश्रु का प्रवाह कभी लोचनों से,
जो न ताप मानस का भाप उन्हें करता।

रहती न नेक शेष श्वास वेग बढ़ने से,
जो न उर विषम वियोग आह भरता।

पाते प्राणपति भी पता न इन प्राणों का जो,
मानस में मिलनाभिलाषा में न धरता।

—०—

चाकरी का चुनाव

चाहत न कालिज की प्रोफेसरी अब नाथ,
चाहत न रेलवे में झंडी को डुलाइबो।

ह्वै कें हकीम हमें दौरिबें न द्वार-द्वार,
बनि कें बकील नाहीं बात हू बनाइबो।

मन में न नैकु मनमानी करिबे की चाह,
नोकरी पुलिस की तासों नैकु ना सुहाइबो।

चाकरी मिलैगी मनभावती हमें तो एक,
टैनिस में मेमनु की गेंदनु उठाइबो।

सुभीते की सवारी

ऊँटनु पै बैठें सों कमर चूर-चूर होत,
घोड़नु पै बैठें डर लागत है गिरिबे को।

हाथी की सवारी हू है टाँगति हवा में हमें,
झोंका के लगे सों नहीं संशय है मरिबे को।

पालकी में बैठिबे सों देह झकझुरि जात,
ऐसीहू सवारी कहौ कौन काम सरिबे को।

ताव दै कें मूंछनु बिराज लीजे गदहा पै,
नाचौ चहैं गावौ नहीं काज कछू डरिबे को।

शिक्षक के प्रति

राम और बुद्ध ने सदैव जिन्हें मान दिया,
और श्रीकृष्ण ने न सेवा कभी त्यागी थी।

वीर शिवराज सदा जिनके समक्ष झुके,
अर्जुन से वीर की सदैव भीति भागी थी।

जिनकी पुकार पर शिष्य-मण्डली समस्त,
प्राण-दान देने की अतीव अनुरागी थी।

जब-जब गुरुओं की उत्तम परंपरा थी,
जीवन की ज्योति तभी भारत में जागी थी।

(२)

गुरु कहलाते हो तो ध्यान यह रखिए कि,
अनुकरणीय हों तुम्हारे सभी नये काम।

शिक्षक-समूह का सुयश कर आपके में,
आपके ही कारण न हो जाए बदनाम।

नमक भुलादे यदि अपना सलोना गुण,
कैसे व्यंजनों का स्वाद पाएँगे सलोने श्याम।

कीर्त्ति-वल्लरी तुम्हारी विकसित होगी यदि,
पाते ही रहेंगे हम क्यों न फल अभिराम।

दीपावली

जल गये दीप फिर दीपावली के,
सुमन विकसित हुए हैं या कली से।

न निकला चाँद क्या शरमा गया है,
अँधेरा क्यों गगन में छा गया है।

नया आकाश भू-तल पर बना है,
अनेकों चन्द्र हैं, तारे यहाँ हैं।

उसे प्रतिद्वन्द्विता ये खल रही है,
आग उसके हृदय में जल रही है।

अभी तक नित्य सागर के मुकुर में,
देख प्रतिबिम्ब होता मत्त उर में।

किन्तु अब आज तो दुनिया नयी है,
चमक है, ज्योति है, शोभा नयी है।

ठाठ सब हो गया बिलकुल निराला,
गगन यह देख कर है और काला।

वर्ष भर के सभी संताप भूले,
मग्न हैं वृद्ध-बालक फूल-फूले।

उधर कुछ नारियाँ दीपक सँजोतीं,
दीप के स्नेह में बाती डुबोतीं।

जला कर दीप थाली में सजाये,
मुंडेरों पर कतारों में लगाये।

प्रकट उनके हृदय का हर्ष करते,
दर्शकों का सभी संताप हरते।

जल गये दीप फिर दीपावली के।
सुमन विकसित हुए हैं या कली से।

कोकिल

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली डाली ?

क्या तूने कुछ निधि पाई है ?
बता कहाँ से तू आई है ?
स्वर-लहरी अनुपम लाई है,
उर अनुराग जगाने वाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

वन उपवन के सुमन खिल गये,
मदन और मधुमास मिल गये।
हृत्तंत्री के तार हिल गये,
करने आई तू रखवाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

नन्दन-वन का कोष लुट गया,
महि-मण्डल में समा जुट गया।
सुन्दरता का ठाट ठट गया,
इस निधि को अपनाने वाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

भ्रमरों का गुंजार जहाँ है,
सौरभ का संसार जहाँ है।
मादकता-शृंगार जहाँ है,
उस निकुंज की रहने वाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

नूतन-किशलय मय रसाल हैं,
पहने मृदु-मंजरी माल हैं।
सौरभ-आमंत्रण बिशाल हैं,
उन्हें निहाल बनान वाली।

ओ मतवाली ! काली काली ?!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

विधि से यह वरदान मिला है,
कृष्ण-वेणु सम्मान मिला है।
नारद-वीणा-गान मिला है,
तानसेन की तानों वाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

प्रेम-प्रमुख है पृथ्वी-तल पर,
सभ्य सभी हैं इसके बल पर।
मिले प्रेम से जय अरि-दल पर,
जग को यही सिखाने वाली।

ओ मतवाली ! काली काली !!
कूक रही क्यों डाली-डाली ?

करघा

वीरों ने अनेक बलिदान दिये आगे बढ़,
तब कहीं स्वराज्य का अवसर छाया है।

जनता के जीवन में जागरण गूंज उठा,
मजुल प्रकाश घर-घर आज आया है।

सबको समान सुख सुविधाएँ मिल सकें,
इसका विधान हम सब ने बनाया है।

सम्पति का वितरण समाज-कल्याण हेतु,
करने को करघे का अस्त्र अपनाया है।

(२)

बड़े-बड़े महलों में वैभव विराजता है,
किन्तु कुटिया की कठिनाई नहीं घटती।

जगमग ज्योति से जगाते नित्य दीपमाला,
किन्तु यहाँ दीपक की बाती नहीं जुटती।

श्रम में विभोर दिन काट लेते जैसे-तैसे,
भूख से विकल किन्तु रात नहीं कटती।

जब तक मिल-माल मन को लुभाता रहे,
तब लौं विषमता की खाई नहीं पटती।

(३)

मिलों के विकास ने उजाड़ दिये ग्राम-ग्राम,
भोले ग्राम-वासियों को नागर बना दिया।

विचरण करते थे स्वच्छ वायुमण्डलों में,
उन्हें बन्द पिंजड़े का चाहक बना दिया।

स्वास्थ्य का न ध्यान, सुख स्वप्न के समान सदा,
जीवन-प्रवाह अति कुंठित बना दिया।

मृग-तृष्णा के माया-जाल में भ्रमित हो कर,
भागते कुरंग सम व्याकुल बना दिया।

(४)

व्यथित समाज हेतु शान्ति का संदेश लिए,
करघे का युग फिर लौट कर आया है।

बड़े-बड़े वैभव विलासियों का ध्यान छोड़,
दीन कुटिया में फिर दीपक जलाया है।

श्रमिकों के दल का सबल संगठन कर,
श्रमहीन व्यक्तियों को उद्यम दिलाया है।

करघे ने कर को दिया हैं काम एक ओर,
सरकारी कर से तो उधर बचाया है।

(५)

अति ही विनम्र अब सेवा में निवेदन है,
इस योजना में अब पूरा योग दीजिए ।

बुन-कर मंडली की वस्तुएँ ख़रीद कर,
उनके विकास में भी सहयोग कीजिए ।

जीवन में वस्त्र की समस्त आवश्यकताएँ,
पूरी करने को करघे का वस्त्र लीजिए ।

सागर में जलधार बहती है मोड़ कर,
मरु-थल को अवश्य तर कर दीजिए ।

--:--

बतकम्मा

विजया कल साज बजे न बजे, हम आज ही मोद मना रहे हैं।
सजा सुन्दरियों ने अनोखा शृंगार, नहीं आनँद अंग समा रहे हैं।
प्रति गेह के सामने कुंज बने, जहाँ गायक बाजे बजा रहे हैं।
बतकम्मा बने सुमनो के समूह सजे हुए थाल में जा रहे हैं।

उत्साह भरी सरिता कब की, इस द्यौस की बाट, थी जोह रही।
अठखेलियाँ बीचियों से करके, क-वारि की माला पिरोह रही।
उसे आज प्रसून-समूह मिले, कल-नाद से मोद में मोह रही।
उर बीच विभा बिखरी कमनीय, मनोहर साज से सोह रही।

कहीं षोड्सी गर्व से हाथ हिला, बजा तालियाँ नाच रहीं घर में।
कहीं बालिका-मण्डली मण्डली बाँध, विनोद के साज लिए कर में।
यहाँ घूम रहीं अनुरागमयी, अति चाव लिये अपने उर में।
सरिता के समीप न जा सकीं जो, वह फूल सिरा रहीं है सर में।

—:—:—

नागरी का निवेदन

नम्र निवेदन सुनहुँ सकल दक्षिण के वासी।
उत्तर के अनुरागनु सों क्यों भये उदासी।
प्रेम-सूत्र में बाँधनों, बिखरौ भारत देश।
यही सदा मेरें रह्यौ, जीवन कौ उद्देश।
फेरि चिन्ता कहा।

(२)

भेद-भाव बिसाराइ सबनु मो कहँ अपनायो।
सुदृढ़-संगठन भयौ, बिदेसी मारि भगायौ।
संविधान अपनौ रचौ, सब मिलि अपने हाथ।
हिन्दी के सम्मान में, सब नेतनु कौ साथ।
देश की एकता।

(३)

बहुत प्रतीक्षा करी वर्ष शुभ पेंसठ आयौ।
हृदय-बेलि लहलही, नागरी आसन पायौ।
भारत भव्य भविष्य कौ शुरू भयौ अभियान।
भाषा कौ बल पाइकें, ह्वै-ह्वै नव-निर्माण।
नहीं शंका कछू।

(४)

दक्खिन में कछु अनचाहे सुर परत सुनाई।
राजनीति कौ रोगु आगि यह गयी लगायी।
याहि बुझावहु बेगि सब शीतल वाणी बोलि।
प्रेम-भाव प्रकटाइये, ग्रन्थि हृदय की खोलि।
पवन मति दीजियै।

(५)

काँग्रेस के बड़े देश में कीरति छाई।
करें काम की बात कहा तिन पै बनि आई।
कामराज नें कहि दई एक अनोखी बात।
हिन्दी पत्राचार कैं यारों मारौ लात।
बात अति बेतुकी।

(६)

अँग्रेज़ी कौ मोहु अजहुँ नेतनु पै छायौ।
अपनी भाषा की उन्नति कौ ध्यानु न आयौ।
हिन्दी भाषा के लयें, दक्खिनभयौ विदेस।
अँग्रेज़ी पै रीझि कें, देत हिये में ठेस।
चोट गहरी लगै।

(७)

बिनु अँग्रेज़ी ज्ञान, जर्मनी जग में छायो।
अँगरेजनु कौं विविध भाँति सों नाच नचायो।
फ्रेंच, इटली और डच, रूस और जापान।
सब देशनु मे ह्वै रह्यो निज भाषा सम्मान।
सबनि उन्नति करी।

(८)

अँग्रेज़ी के बिनहुँ देश की उन्नति ह्वै है।
भाषा समरथ होइ ता दिना जग जस गैहे।
तौ लौं यह स्वाधीनता है गूलर कौ फल।
पात-पात कौ सींचिबौ, छाँड़ि तरुन कौ मूल।
बिरछ कैसें फरें।

—:०:—

बलिवेदी पर

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

अपना तन-मन-धन सब दे दो,
माँ ने माँगा अंचल पसार।

सबसे पहले आगे आये,
माँ पर आया संकट निहार।

बलिवेदी पर चढ़ जाने को,
पहना यह वीरों का बाना।

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

स्तन्य न माँ का लज्जित हो,
बैरी क्यों घर में घुस आए।

जो वक्र दृष्टि डाले हम पर,
अभिमान न उसका टिक पाए।

प्राणों की बाज़ी लगा तुम्हीं ने,
लड़ने का दृढ़ हठ है ठाना।

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

दुर्गम पथ है, अरि सम्मुख है,
हथियार तुम्हारे पास नहीं।

गोली-गोलों की ब्यौछारें,
जीवन की कोई आस नहीं।

अपमान न होने देंगे हम,
यह सूत्र सदा तुमने माना।

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

अपना घर कौन बसाएगा,
किस भाँति लाल चिल्लाएगा।

माता, पत्नी, बेटी, भगिनी,
का जीवन कौन बनाएगा।

पहले भारत माँ की पुकार—
घर का न मोह तुमने जाना।

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

धनवानों को धन प्यारा है,
युवकों निज तन प्यारा है।

मन के संकल्प विकल्पों में,
घर उनका उनकी कारा है।

अपना तन-मन-धन सब दे कर
तुमको प्यारा बलि हो जाना।

प्राणों का क्या है मूल्य,
तुम्हीं ने पहचाना।

दीपक

रवि न शशि ने कुछ तारकों ने, जगती-तलमें निज नाम कमाया।
घनघोर घिरा तम देख कहीं, चल-चंचला ने नभ को चमकाया।
बन-बीहड़ में पथ भूले हुए, जन को मग त्यों जुगनू ने जताया।
इस भाँति प्रकाश का पाया पता, 'मधु' मानव ने तब दीप जलाया।

मृदु-मृत्तिका को ले शरीर बना, उसे भीषण अग्नि में डाला गया।
उस आतप में तप मान मिला, सुर-सुन्दरी हाथ सँभाला गया।
'मधु' स्नेह से प्लावित गात हुआ, शिशु के मुझ प्यार से पाला गया।
वर-बाती में ज्योति लगाई गई, तम मेटने को मुझे बाला गया।

कभी कंज-मुखी कर में सुख पा, उसका मुख चाव से हेरता हूँ।
कभी वायु के वेग से प्राण बचा, उस अंचल में खुल खेलता हूँ।
निशि-नीरव में बन प्रेम का चिन्ह, समाधि पै ज्योति बखेरता हूँ।
कहीं व्योम-दिया बना भूले हुए, प्रिय को 'मधु' चाव से टेरता हूँ।

अवली जब दीपकों की जलती, अवनी में अकाश विराजता है।
उस घोर अमा-निशि का तम भी भय मान के दूर ही भाजता है।
नर-लोक में राशि प्रभा की लसी, सुर-लोक विलोक के लाजता है।
सब शोक मिटा मन मानव का, 'मधु' मत्त-मयूर-सा नाचता है।

फूल

कलिका बना डाल पै सो रहा था,
रवि के कर ने मुख चूम जगाया।

शशि अमृत से नहला चुका था,
अब ऊषा ने लाल-गुलाल लगाया।

शिशु-सा मुझको सम्मान दिया,
मृदु-पौन ने अंक ले झूला झुलाया।

यह मोद समा न सका उर में,
मुख खोल दिया तब फूल कहाया।

भ्रमरावली चारण-चारु बनी,
गुणगान मनोहर गाने लगी।

कल कोकिला कंठ न मौन रहा,
वह तान में तान मिलाने लगी।

विहँगावली बोलने बोल लगी,
स्वर साध के बाजा बजाने लगी।

किया मारुत ने 'मधु' सौरभ-दान,
महोत्सव मानो मनाने लगी।

मेरी पंखुड़ियों की विलोक प्रभा,
तितली अनुराग-विभोर बनी।

पल एक को अंक में बैठ गयी,
रस-लालच में उन्मत्त घनी।

पर वायु का पूरा प्रहार हुआ,
प्रतिद्वन्दियों में मनो-रार ठनी।

उड़ दूसरे बाग़ की ओर गयी,
वह प्यास बुझा चुकी थी अपनी।

कल देख गयी मुझे बालिका जो,
वह आज उद्यान में घूमने आई।

कर पल्लव कंटकों में उलझा,
मुझे डाल से सुन्दरी तूमने आई।

यहाँ मोद का साज सजा हुआ था,
उसे देखने या झुक झूमने आई।

अनुराग-विभोर विलोचनों से,
रस-धार बहा मुझे लूमने आई।

उसके पग की ध्वनि को सुनके,
मेरा अंग न फूला समा रहा था ।
उसके कर-चुम्बक के लिए मैं,
मृदु-लौह बना खिंचा जा रहा था ।
उस चारु-चितौनि का बन्दी बना,
मन ही मन में मुसका रहा था ।
अब बात के वेग का ध्यान न था,
बिना मोल ही यों बिका जा रहा था ।

निज-अंचल की मृदु झोली बना,
उस सुन्दरी ने मन-माना किया ।
उस वाटिका की मुसकान उठा,
उर के तले ठीक ठिकाना किया ।
इस ओर कभी, उस ओर कभी,
निज नेह-निगाह निशाना किया ।
भरी मोद सो सुन्दरी लौट चली,
उस वाटिका को वीराना किया ।

—:—:—

कश्मीर हमारा है

छूट आये जेल से है शेख अब्दुल्ला फिर,
उनके विचार जानने को लोग धाते हैं।

कभी मौन धारते हैं, कभी वक्त माँग लेते,
कभी पूर्व-मित्रों को गालियाँ सुनाते हैं।

उनकी अनुपस्थिति में भव्य जो विधान बना,
उसके प्रति आस्था न भूल दिखलाते हैं।

माँगते हैं अधिकार भाषण-स्वतन्त्रता का,
किन्तु नागरिक का कर्तव्य भूल जाते हैं।

(२)

भूल गये शेख जी है वह दुर्दिन जब,
संकट समीप पाके दिल्ली दौड़ आते थे।

अपनाके भारतीयता का भव्य आवरण,
भारत की एकता के मंजु गीत गाते थे।

अरि-दल देश में घुसा है यह देख कर,
भारतीय वीरों को ही प्रेम से बुलाते थे।

मानते थे कश्मीर भारत से अविभाज्य,
भारत को भक्तिभाव से सर झुकाते थे।

(३)

बदल गयी हवा न जाने किस कारण से,
क्योंकि शेख जी को अब भारत न भाता है।

स्वप्न देखते हैं वे स्वतंत्र कश्मीर का भी,
भारत से उनका न कोई नेह नाता है।

जनता ने जीवन की सुख-सुविधा के लिए,
मार्ग जो बनाया, उन्हें वह न सुहाता है।

नाम लेते फिर भी हैं जनता की सेवा का ही,
वाक्पटुता से उन्हें बहकाना आता है।

(४)

भूल सकते न हम उन बलिदानों को हैं,
जिनसे बनी भारत की यह तस्वीर है।

पीर जो हमारी जान के भी पहचानता न,
शेख हो भले ही पर पीर बेपीर है।

भेद-भाव डालने में अब न सफल होगा,
प्रेम-सूत्र से बँधी हमारी तक़दीर है।

एकता का राग सब ओर ही सुनाई देता,
हम कश्मीर के हमारा कश्मीर है।

ओस

स्वागत मेरे कौन मोती ये बखेर गया,
अथवा छिड़क गया, जल कौन बन में।

किसी ने सजाया क्या है साज ये अनोखा आज,
जिसे देख मन नहीं लगता भवन में।

किंवा दिवाकर के विरह सताई हुई,
रोती रही प्रकृति बिचारी निर्जन में।

देख कर ओस-कण हरित वन-स्थली में,
उठतीं अनेक भावनाएँ मंजु मन में।

(२)

देते नहीं ध्यान ज्ञान रखते विज्ञान का जो,
उनको तो ओस-कण एक बूंद पानी है।

किससे बना है, यह देखते रहे वे सदा,
किन्तु भेद की न कुछ बात पहचानी है।

ऋषियों के आश्रमों की झलक इसी में छिपी,
प्रीति भी प्रकृति-प्रति इसी में समानी है।

भारतीय जीवन का गौरव इसी में भरा,
भारतीय सभ्यता की एक ये निशानी है।

(३)

भारत का जब मैं भविष्य सोचता हूँ बैठ,
पूँजीपतियों के जो प्रभाव को विचारता ।
कोठियों की, मिलों की महत्ता दीख पड़ती तो,
स्वच्छ वायु-मण्डल को धूम्र में निहारता ।
हरित वन-स्थली न दीखती है दूर-दूर,
सुखद समीर को भी खोज-खोज हारता ।
ओस-कण-सुषमा को ठौर कहीं दीखती न,
होता हूँ बिकल 'मधु' आँसू चार डारता ।

—:·:—

आकांक्षा

मुख मौन प्रेम प्रलापने को,
गुण आपके बैठ के गाया करूँ।

उर में न कभी हों बिचारे बुरे,
तुमको ही सदा उर लाया करूँ।

हिय हार के नीच से मैं न नमूँ,
पर आपको शीश नवाया करूँ।

भगवान मिले वरदान यही,
बस आपका दास कहाया करूँ।

भगवन्

तन में तुम हो, मन में तुम हो,
पर ध्यान में क्यों तुम आते नहीं।

तुम देखते हो दिन रात हमें,
पथ भूलने से क्यों बचाते नहीं।

मन-भाव सभी पहिचानते हो,
पर तो भी हमें समझाते नहीं।

करुणानिधि जानो हमें अपना,
फिर क्यों हमको अपनाते नहीं।

———

समिति के अन्य प्रकाशन

१.	साहित्य (आलोचना के सिद्धान्त)	०.५०
२.	द्वितीय महासमर (ब्रजभाषा काव्य)	०.५०
३.	प्रसाद का 'आँसू' (आलोचना और व्याख्या)	२.००
४.	विश्राम (नाटक)	२.००
५.	नीति शतक (ब्रजभाषा काव्यानुवाद सहित)	१.००
६.	मंजरी (खड़ी बोली की रचनाओं का संग्रह)	२.००
७.	वृन्दा-वन (ब्रजभाषा की रचनाएँ)	१ २५
८.	तीन फूल--श्री रूपनारायण जी चतुर्वेदी (भावानुवाद)	०.७५

शीघ्र ही प्रकाशित होंगे :—

१. अँग्रेज़ी नाटक साहित्य का इतिहास (प्रेस में)
२. यूरोप की डायरी
३. शृंगार शतक (भर्तृहरि)
४. वैराग्य शतक (भर्तृहरि)
५. वनवासी के गीत (कविताएँ) (प्रेस में)
६. वीरजा (कविता) स्व. शिशुपाल सिंह "शिशु"